भारत की क्रांतिकारी आदिवासी औरतें

वासवी किड़ो

सम्पादक
रमणिका गुप्ता

भारत की क्रांतिकारी आदिवासी औरतें

वीरांगनाएं जिनका इतिहास में कोई जिक्र नहीं!

पुरुष सत्तात्मक समाज में महिलाओं की प्रतिभा को नज़र-अंदाज़ किए जाने की प्रवृत्ति हर काल में मौजूद रही है। भारतीय इतिहास में सिर्फ उन्हीं महिला वीरांगनाओं का जिक्र किया गया है जो राजघरानों या सामंत परिवारों से संबंधित थीं अथवा जनमानस में स्थान बना चुकी थीं। लेकिन उनकी सहयोगी दासियों का जिक्र नहीं किया गया जबकि उनका योगदान कहीं से भी कमतर नहीं था। तथ्य बताते हैं कि भारत की आज़ादी की लड़ाई में महिलाओं ने पुरुषों से कहीं बढ़-चढ़कर शौर्य का प्रदर्शन किया और कुर्बानियाँ दीं। लेकिन उनमें से कुछ गिनी चुनी नेत्रियों को ही इतिहास के पन्नों में स्थान पाने योग्य समझा गया। उनके बारे में छिटपुट जानकारियाँ ही उपलब्ध हैं। उन औरतों को भी नज़र-अंदाज़ किया गया जो योद्धाओं को युद्ध में भेजती रहीं, साथ-साथ संघर्ष भी करती रहीं और घर का कामकाज भी संभालती रहीं। जो पति के शहीद होने पर बहादुरी के साथ बच्चों को पालती रहीं—उनका समावेश करना, इतिहास को गंवारा नहीं हुआ।

मैं 1918 में और फिर 1994 में रूस गई थी। मैंने साधारण नागरिक की याद में बुत बने देखे जो शहीद हुए थे। स्त्रियों की कुर्बानी को भी रूस ने एक धरोहर बना कर संभाल रखा, पर हमारे देश में जो बंटा समाज है, उसे कभी महिलाओं की कुर्बानी की चिंता नहीं रही। बिरसा का ऊलगुलान आदिवासियों का सबसे चर्चित संग्राम था। गैर आदिवासियों के बीच भी इसकी चर्चा रही है। इस आंदोलन में महिलाओं और बच्चों की भागीदारी की चर्चा जरूर की गई है लेकिन भीड़ के एक हिस्से की तरह। किसी का नाम दर्ज नहीं किया गया। इसके बाद जतरा ताना भगत ने असहयोग आंदोलन चलाया। ब्रिटिश हुक्मरानों ने 1914 में उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उन्हें डेढ़ साल सज़ा हुई। लेकिन संग्राम रुका नहीं। बटकुरी गांव की देवमनी उर्फ वधनी ने जत्रा उरांव के असहयोग और सत्याग्रह की मुहिम को ज़िंदा रखा। ये ताना भक्तों का संग्राम अंहिसक था। लेकिन इतिहास में उसे भी जगह

नहीं मिली।

आदिवासी औरतें पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिला कर भागीदारी करती हैं। इसके विपरीत गैर-आदिवासी समाज खासकर सवर्ण समाज में राजकुमारियाँ, रानियाँ, महारानियाँ, बेग़में, सामन्तों की पत्नियाँ या किसी की माँ या बेटी होने के नाते औरतों ने व्यक्तिगत रूप से भागीदारी की। यह तो महात्मा गांधी के स्वतंत्रता आंदोलन में कतिपय स्थानों पर सवर्ण स्त्रियाँ भी समूह के रूप में आई। आदिवासी औरतों की सामूहिक भागीदारी ने उनके समूह को भी जगाया। कोयलाकारो आंदोलन में मुण्डारी भाषा न बोल पाने वालों का प्रवेश वर्जित कर दिया था। विडम्बना यह है कि उस सामूहिक भागीदारी को भी इतिहासकारों ने दर्ज न करके इतिहास के साथ विश्वासघात किया।

पितृसत्तात्मक समाज की इस भेदभावपूर्ण नीति और बौद्धिक बेइमानी का जवाब सिर्फ इतिहास के उन विस्मृत पृष्ठों को ढूंढकर निकाल लाने के जरिए ही दिया जा सकता है। रमणिका फाउंडेशन ने हाशिए में डाले गए तबकों को मुख्यपृष्ठ पर लाने की मुहिम चलायी है और इसके लिए लोगों को प्रोत्साहित किया है। इसी भावना के तहत हमने वासवी किड़ो की इस शोधपूर्ण पुस्तक को प्रकाशित करने का निर्णय लिया। वासवी ने सिर्फ संदर्भ पुस्तिकाओं के आधार पर तथ्यों का संकलन नहीं किया बल्कि संबंधित गावों में जाकर बड़े-बुजुर्गों और वीरांगनाओं के परिजनों से मिलकर जानकारियाँ एकत्र की हैं। यह एक बड़ा काम है लेकिन हमारा मानना है कि यह एक व्यापक विषय है और इसपर निरंतर काम करने की जरूरत है।

इससे पहले हम शौर्य और विद्रोह के नाम से आदिवासी वीरों की गाथाओं से संबंधित दो पुस्तकें प्रकाशित कर चुके हैं एक में उत्तर और दक्षिण भारत के वीरों की कथाएं हैं तो दूसरे में पूर्वोत्तर के वीरों की। लेकिन स्त्री वीरांगनाओं की कमी खल रही थी। वासवी ने यह शोधपरक पुस्तक क्रांतिकारी वीरांगनाओं को केंद्र में रखकर तैयार की है और उस कमी को भरा है।

इस पुस्तक में आदिवासी औरतों के व्यक्तिगत बलिदान के साथ-साथ उनकी सामूहिक भागीदारी व नेतृत्व की क्षमता को वासवी किड़ो ने शामिल किया है, जो इस पुस्तक को दूसरों से भिन्न बनाता है।

–रमणिका गुप्ता

दो शब्द

मध्य आदिवासी क्षेत्र के समाज में महिलाओं का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। आदिवासी अर्थव्यवस्था में आदिवासी संस्कृति के संरक्षण एवं पोषण में महिलाओं की अहम भूमिका रही है। लेकिन संसाधनों के स्वामित्व के मामले में और विशेषकर परिवार एवं समाज संबंधी निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनका प्रत्यक्ष योगदान नहीं रहा है। यही बात आदिवासी महिलाओं के आदिवासी आंदोलन में योगदान के बारे में भी साधारण रूप से कही जा सकती है। लेकिन आदिवासी आंदोलन विशेष ऐतिहासिक परिस्थितियों में हुए और इसमें कुछ महिलाओं का योगदान स्मरणीय है।

संताल विद्रोह में शामिल एक-दो महिलाओं का जिक्र लोक-गीतों में आता है। बिरसा आंदोलन में गया मुंडा की पत्नी माकी की बहादुरी का विस्तृत विवरण मिलता है। हरि बाबा आंदोलन में हरिमाई को पवित्र जल देते हुए दर्शाया गया है। टाना भगतों के बीच भी ऐसी महिलाओं का योगदान है। उत्तर-पूर्व भारत में रानी गैयदील्यू का स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लेना और फिर स्वतंत्रता के बाद समाज सुधार के क्षेत्र में नेतृत्व प्रदान करना एक बहुमूल्य धरोहर है।

बड़ी संख्या में आदिवासी महिलाओं के आदिवासी आंदोलनों में भाग लेने का सिलसिला आदिवासी महासभा से शुरू हुआ। इन आंदोलनों में इनकी व्यापक भागीदारी थी। इनमें महिलाओं की भूमिका के बारे में विस्तृत वर्णन मिलता है। इधर जब से आदिवासियों के संसाधनों पर विशेष दबाव पड़ रहा है, तब से महिलाओं की भूमिका और भी सक्रिय हो गई है। वस्तुतः मेरा मानना है कि महिलाएं ही पर्यावरण संसाधन और संस्कृति की संरक्षिका है और उन्हें और भी आगे बढ़ कर इन क्षेत्रों में काम करना है।

डॉ. कुमार सुरेश सिंह

यह इतिहास के गर्भ में दफन क्रांतिकारी आदिवासी औरतों की वीरगाथा है

यों तो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में औरतों की भागीदारी को लेकर थोड़ा इतिहास लेखन का कार्य हुआ है। इस कारण उन क्रांतिकारी महिलाओं के नाम का उल्लेख यदा-कदा किया जाता है। इन नामों की सूची में आदिवासी भारत के ऐसे इलाके अछूते रहे हैं जहां ब्रिटिश साम्राज्य से लोहा लेने का काम आदिवासी औरतों ने किया। आजादी की लड़ाई में मुख्यधारा में रहे लोगों का नाम काफी प्रमुखता से लिया जाता है। लेकिन अपने-अपने इलाके में युद्ध करने और लंबे समय तक जेल की यातनाएं सहने तथा मौत को गले लगाने वाली महिलाओं के नाम और संबंधित दस्तावेज़ अब भी इतिहास की मुख्यधारा का अंग नहीं बन पाए हैं।

रानी रौपुइलियानी और रानी पुई गैदीनल्यू के नाम कम से कम ऐसे ही हैं जिनकी क्रांतिकारिता और विद्वता के सामने अंग्रेज़ों को झुकना पड़ा और आदिवासी राज्यों में अपने पाँव जमाने में उन्हें मुश्किलों का सामना करना पड़ा। भारी विद्रोह के बीच ही उन्हें भारत छोड़ना पड़ा था। रानी दुर्गावती भी ऐसी ही महान योद्धा थीं, जिन्होंने शक्तिशाली ब्रिटिश राज की नींव हिला दी थी। मुख्यधारा के पितृसत्तात्मक इतिहास में पुरुष नायकों का महिमामंडन तो किया गया लेकिन औरतों को विस्मृत कर दिया गया। अभी भी इतिहास की धारा में ऐसे नामों के समावेश को लेकर मतभेद है और विशेषकर आदिवासी, दलितों और औरतों के योगदान को स्वीकार करने की स्थिति बनाने की जद्दोजहद जारी है।

क्रांतिकारी औरतों की चर्चा में बेगम ज़ीनत महल, बेगम हजरत महल, रानी लक्ष्मीबाई, रानी तुलसीपुर, रानी रामगढ़, रानी तेज़बाई, तुकलाई बेगम, जमानी बेगम, महारानी तपस्विनी के नाम भी उजागर होते हैं। 1857 की क्रांति में हजारों औरतों को गोली मारे जाने या फांसी देने की जिक्र मिलता है। केवल मुजफ्फरनगर में 255 औरतों की शहादत का रिकार्ड मिलता है। मैडम भीकाजी कामा, प्रीतिलता वद्देदार, कल्पना दत्त, गर्वनर पर गोली चलानेवाली वीणा दास, सुनीति चौधरी और शांति घोष

जैसी महिलाओं के बहादुराना किस्से इतिहास का अंग बने हैं। दरअसल 1857 की क्रांति को प्रथम क्रांति या सैनिक विद्रोह या 'गदर' की संज्ञा भले ही मिली हो लेकिन अब इतिहास के अनेक छुए-अनछुए पहलू सबऑलटर्न स्टडीज़ के सहारे सामने आ रहे हैं। सबऑलटर्न स्टडीज़ अकादमिक अध्ययन की आज सबसे ज्यादा जरूरत है। अब यह प्रमाणित हो गया है कि 1857 के पूर्व भी आदिवासी इलाकों में 1766 और उसके पहले से अंग्रेज़ों के साथ युद्ध होता रहा है। इसके फलस्वरूप आदिवासी इलाकों में अंग्रेज़ों ने एक अलग किस्म की शासन-प्रणाली विकसित की और आदिवासियों से संबंधित विद्रोहों का दस्तावेज़ीकरण अपने रिकार्डों और डायरियों में किया। इससे आदिवासी इतिहास पर रोशनी पड़ सकी है। अंग्रेज़ों ने अपने रिकार्ड में इस बात का जिक्र किया है कि आदिवासी इलाकों में लड़ाई तीखी थी और आदिवासी योद्धाओं को हराना आसान नहीं था। हालांकि 1857 के पहले 1757 में पलासी का युद्ध हुआ था। मीरजाफर ने जब सिराजुदौला को हराया उसी समय गुलामी की नींव पड़ गई थी।

आशारानी व्होरा ने अपनी पुस्तक 'नारी-विद्रोह के भारतीय मंच' में लिखा है कि 1857 के पहले हुए संन्यासी विद्रोह में देवी चौधरानी अंग्रेज़ों के खिलाफ जंग छेड़नेवाली अग्रणी नेत्री थीं, जिन्होंने अंग्रेज़ों का मुकाबला किया और उनके शासन को ध्वस्त किया। इस कारण अंग्रेज़ों ने अपने रिकार्ड में उन्हें लुटेरा और दस्यु लिखकर संबोधित किया है। वे अपने काल की प्रख्यात स्वतंत्रता सेनानी थीं। वे संन्यासी दल की नेता थीं। तमाम संन्यासियों ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध बगावत की थी।

आदिवासी इलाके में हुए चुआड़-विद्रोह का वर्णन आशारानी व्होरा ने किया है और लिखा है कि चुआड़-विद्रोह करनेवाले आदिवासी गरीब किसान थे और रानी शिरोमणि के नेतृत्व में चुआड़ विद्रोह किया गया था।

अब कित्तूर-विद्रोह की बात करें, जो कर्नाटक के कित्तूर नगर का स्वतंत्र राज्य हुआ करता था, वहां के राजा की छोटी रानी चेनम्मा ने राजा की मृत्यु के बाद राज-काज संभाला था। तब की परम्परा के अनुसार उन्होंने बड़ी रानी के पुत्र शिवलिंग रूद्रसर्ज को गोद में लेकर राज-पाट चलाना सिखाया। 1824 में दुर्भाग्य से शिवलिंग की मौत हो गई। ऐसे में रानी चेनम्मा ने ही राज्य की बागडोर संभाली। आशारानी व्होरा ने लिखा है कि नेपाल और पंजाब के असफल विद्रोहों की सूत्रधार रानियां ही थीं।

अब चुनौती यह है कि सम्पूर्ण भारत में हुए जंग और आदिवासी भारत के युद्धों को किस तरह ऐतिहासिक तारतम्य प्रदान किया जाए।

जिस तरह झांसी की रानी लक्ष्मीबाई जन-जन के बीच लोकप्रिय हुईं उस तरह रानी झलकारीबाई लोकप्रिय नहीं हो सकीं। रानी झलकारीबाई के इतिहास को दरअसल ऐतिहासिक दांवपेंच में कहीं विस्मृत-सा छोड़ दिया गया। दलित चिंतक

मोहनदास नैमिशराय ने झलकारीबाई की जीवनी लिखी, तो इतिहास की एक उपेक्षित मगर प्रभावशाली वीरागंना का शौर्य उजागर हुआ। झलकारीबाई रानी लक्ष्मीबाई की सेनापति थीं। झलकारीबाई न होती तो झांसी की रानी क्रांतिकारी वीरांगना नहीं बन पातीं। झलकारीबाई के बालू में महल बनाने और ढहाने के सपने देखने और किला बनाकर सैनिकों पर शासन करने की हसरत ने उनके लड़ाकू चरित्र को उजागर किया है।

वैदिक काल में औरतों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। अधिकांश स्तरों पर महिलाएं पुरुषों के बराबर थीं। उपनिषद्काल की बात कहें तो महिलाएं भी आध्यात्मिक ज्ञान और तत्त्व-दर्शन की शिक्षा ग्रहण करती थीं। वैदिक काल में घोषा, सूर्या, अपाला, लोपामुद्रा, विश्वभंरा, श्रद्धा, यमी, देवयानी आदि ऋषि स्त्रियों की विद्वता से लोगों को चुनौती लेनी पड़ती थी। उपनिषद् काल में उद्दालिका, अष्वला, गार्गी, मैत्रेयी आदि विदुषीगणों से विद्वानों को लोहा लेना पड़ता था।

आदिवासी विद्रोहों का इतिहास अब भी कई मायने में अपूर्ण और अधूरा माना जाता है। इतिहासकारों ने मध्य भारत के आदिवासी इलाकों पर तीक्ष्ण और समग्र दृष्टि डालने से परहेज़ ही किया है। ऐसा स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास के संदर्भ में भी कहा जा सकता है। पूरे ब्रह्मांड में जो पितृसत्ता के कथित नियम-रिवाज़ और व्यवस्था कायम है, उसमें इतिहास के स्त्री पात्रों की घोर उपेक्षा की गई। हूल की स्त्रियाँ हों या संग्राम में शामिल औरतें या फिर समाज सुधार की अगुवाई की भूमिका में रही स्त्रियाँ, सभी को इतिहास के हाशिए पर रखा गया है। जब से साम्राज्यवादी व पूंजीवादी शक्तियों और नवउपनिवेशवादी भौतिकवादी प्रवृत्तियों का तेज प्रसार होना शुरू हुआ है, तब से स्त्रियों का मानसम्मान और उनकी स्वतंत्रता-मर्यादा की रक्षा का सवाल भी ज्यादा गंभीर हुआ है। समाज परिवर्तन और संस्कृति-सभ्यता के बचाव की वाहक स्त्रियाँ रही हैं। ऐसे में *'उलगुलान की औरतें'* आदिवासी समाज की उन बहादुर स्त्रियों की संघर्ष गाथाओं का दस्तावेज़ पेश करती हैं, जो अब तक जनसाधारण की नज़रों से गुज़रा नहीं है।

हालांकि यह एक प्रारंभिक प्रयास है और इसे तैयार करते वक्त हर कदम पर यह महसूस हुआ कि हूल स्त्रियों पर और अधिक काम करने की आवश्यकता है। यह आम और खास सभी स्त्रियों की चेतनशीलता को बढ़ावा देने के मकसद से लिखा गया है। सामूहिकता की रक्षा और देशज आत्मगौरव के लिए स्त्रियों की भूमिका को स्वीकारना सामाजिक मूल्यों की रक्षा करना है। झारखंड का संघर्ष और अस्मिता की लड़ाई इसके बिना पूर्ण नहीं हो सकती। राजनैतिक रूप से चेतनशील अकादमिक व विदुषी महिलाओं के लिए भी यह अमूल्य दस्तावेज़ साबित होगा।

झारखंड पुनर्गठन का सपना भी औरतों की सहभागिकता से ही साकार हो सका है। इसके बावजूद औरतों की राजनीतिक व सामाजिक उपेक्षा को संताली गीतों